वृद्ध जीवन की दुश्वारियों को बयां करती हिन्दी गजल

डॉ राजेश कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

राजकीय महाविद्यालय,

बी°बी° नगर, बुलन्दशहर

जीवन के शाश्वत सत्यों में परिवर्तन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटक है। जीवन-जगत् में समयानुरूप सभी कुछ परिवर्तनशील जान पड़ता है। यह अवश्य है कि कुछ सन्दर्भ में परिवर्तन की गति अत्यंत धीमी रहती है जिसकी अनुभूति बहुत सजग संचेतना के द्वारा ही की जा सकती है जबकि कुछ क्षेत्रों में परिवर्तन की गति बड़ी तीव्र होती है। सभ्यता व संस्कृति को प्रायः धीमी गति से परिवर्तित होने वाली श्रेणी में रखा जाता है क्योंकि ये मानव की हजारों वर्षों की विकास यात्रा में शनैः शनैः स्वरूप ग्रहण करती हुई आगे बढ़ती है। वर्तमान उत्तर-आधुनिक दौर में विज्ञान एवं तकनीकी क्रांति के फलस्वरूप सांस्कृतिक क्षेत्र में भी परिवर्तन की गति में तीव्रता आई है, जिससे भारतीय समाज भी अछूता नहीं रहा है। परिवर्तन की इस बयार ने हमारी हजारों वर्ष की संचित निधि-मूल्य, परम्परा, आस्था एवं पारिवारिक ढाँचे की बुनियाद को ही हिला कर रख दिया है, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक व्यवस्था में भी तीव्र परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इन्हीं परिवर्तनों में से एक है समाज में वृद्धों की स्थिति में आए बदलाव। भारतीय समाज व कला जगत् में वृद्धों की स्थिति को लेकर आए तीव्र बदलावों को रेखांकित करते हुए हिन्दी सिने जगत् का एक उदाहरण प्रासंगिक जान पड़ता है। ''70 के दशक की दीवार फिल्म में नायक छोटे भाई को नीचा दिखने के लिए कहता है 'मेरे पास कार है, बँगला है, बैंक बैलेंस है, प्रोपर्टी है, तुम्हारे पास क्या है?

छोटा भाई कहता है 'भाई मेरे पास माँ है' नायक इस उत्तर से निरूत्तर हो जाता है क्योंकि माँ की ममता की एवज में झूठी सफलता और शानो-शौकत की व्यर्थता अन्तर्मन से स्वीकार करता है। . . . उसी नायक को तीस बरस बाद 'बागबान' जैसी फिल्म में समाज में वृद्ध माता-पिता के प्रति आए इन मूल्यगत बदलावों का अभिनय करना पड़ता है।'[1]

ये सन्दर्भ भारतीय समाज में बुजुर्गों की स्थिति तथा साहित्यिक जगत् में उनके प्रति एक पृथक विमर्श की आवश्यकता को रेखांकित करता है। सदियों की सभ्यता व संस्कृति के विकासक्रम में अर्जित मूल्यों में बुजुर्गों के प्रति आदर एवं सम्मान को भारतीय समाज

की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि माना जाता रहा है किन्तु औद्योगीकरण-वैश्वीकरण के फलस्वरूप आई उत्तर-आधुनिकता की उपभोक्तावादी संस्कृति की आँधी ने एक ही झटके में बुजुर्गों की समाज में उस स्थिति व भूमिका को उलटकर रख दिया है। इसी के चलते हिन्दी गजल में बुजुर्गों की दयनीय स्थिति, उनकी भूमिका एवं महत्ता को लेकर वृद्ध-विमर्श की आवश्यकता महसूस की गई है। एक संवेदनशील विधा होने के नाते हिन्दी ग़ज़ल भी इस दिशा में पूरी संजीदगी एवं जिम्मेदारी के साथ वृद्ध जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दों को निरन्तर उठाती रही है। वृद्ध जीवन और उनमें जुड़े मुद्दों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक आदि कई पहलू है। वृद्ध जीवन जीवनानुभवों का ज्योतिपुंज होता है। विशेष रूप से अपनी संस्कृति, मूल्यों परम्पराओं को आगे बढ़ाने में समाज में उनकी भूमिका बड़ी ही महत्वपूर्ण रहती है। विजय 'वाते' अपनी 'दादी अम्मा' ग़ज़ल के माध्यम से बुजुर्गों के महत्व को रेखांकित करते हुए कहते है-

''शाम होते ही घर आ जाना/हुक्म वो बेमिसाल करती है

भूरे कुत्ते का श्यामा गैय्या का/हम सभी का ख्याल करती है

आज मावस है कल शनीचर है/काम करना मुहाल करती है

सर से इक पल अगर गिरे आँचल/अम्मा दिन भर बवाल करती है।''[2]

अपनी छोटी बह्र की ग़ज़ल में विजय 'वाते' बड़ी सहजता के साथ एक परम्परागत भारतीय संयुक्त परिवार का दृश्य प्रस्तुत करते है, जिसमें बुजुर्ग होने पर भी वृद्धजन पारिवारिक गतिविधियों की केन्द्रीय धुरी हुआ करते थें। ग़ज़ल में 'दादी अम्मा' एक ही साथ कई रूपों में हमारे सम्मुख उपस्थित होती है। यहाँ शाम को घर आ जाने में आत्मीयता व सुरक्षा की भावना जुड़ी है तो 'हुक्म' शब्द से घर में उनकी बात की महत्ता ध्वनित होती है। जीवन में बहुत कुछ है जो विभिन्न समाज व देशकाल में तर्क व औचित्य से परे रहकर भी मूल्यों, परम्पराओं, संस्कार आदि के रूप में विद्यमान रहा है। इस दृष्टि से विचार करें तो परिवार-संस्कार और मूल्यों के वाहक के रूप में घर में बुजुर्गों की उपस्थिति और महत्ता का यह ग़ज़ल बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत करती है। जवाहर 'इन्दु' परिवारिक-संस्कारों एवं मूल्यों में आए बदलावों को अपनी ग़ज़ल में बड़ी सूक्ष्मता और गहनता से व्यक्त करतें हैं-

''हुए दहलीज से बाहर बिताते रात बोरिंग पर

बुजुर्गों के लिए केवल बचे ऐसे ठिकाने हैं

कमाऊ पूत के आगे बुढ़ापा होठ सिल लेता

हकीकत को बयाँ करती, धँसी आँखें, जुबाने है।''[3]

यह परिवर्तित होते जीवन मूल्यों की एक खुरदरी तस्वीर है कि बुजुर्ग परिवार की केन्द्रीय धुरी से परिधि की ओर कैसे खिसकते चले गए है? यद्यपि बुजुर्गों के प्रति भेदभाव व अपमान की घटनाएँ पहले भी समाज में घटित होती रहती थी, किन्तु उनके प्रति

सामाजिक दृष्टि यही थी कि बुजुर्गों का आदर व सम्मान हमारी संस्कृति व संस्कारों का महत्वपूर्ण अंग है। कमलानंद झा ने अपने एक लेख 'वृद्ध विमर्श: परस्पर और आधुनिकता का द्वंद्व' में साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समाज में आ रहे इन मूल्यगत बदलावों पर बहुत सारगर्भित टिप्पणी की है ''प्रेमचंद की कहानी 'बूढ़ी काकी' की पात्र रूपा वृद्ध बूढ़ी काकी के प्रति अपने उपेक्षित व्यवहार के प्रति ग्लानि महसूस करती है किन्तु स्वतंत्रता के बाद के सामाजिक और आर्थिक बदलावों के बाद 'चीफ की दावत' कहानी का शामनाथ अपनी वृद्ध माँ के प्रति अपने उपेक्षित व्यवहार के लिए किसी तरह की ग्लानि महसूस नहीं करता है। वृद्धों के प्रति यह उपेक्षित रवैया समय के साथ बढ़ा ही है। मूल्यों के इस छिजते दौर में ग्लानि, पश्चाताप और सेवा भाव जैसे मूल्यों का लोप होता जा रहा है।''[4]

कमलानंद झा की टिप्पणी वृद्ध जीवन के प्रति सामाजिक व्यवस्था एवं जीवन दृष्टि में आ रही मूल्यगत संक्रमणशीलता को बड़ी गम्भीरता के साथ विश्लेषित करती है। यह मात्र दो पीढ़ियों के वैचारिक द्वंद्व का प्रश्न नहीं है और न ही समय के साथ आने वाले बदलावों का। इस टकराव का एक दुःखद पहलू यह है कि जब माता-पिता (बुजुर्ग) अपनी सुख-सुविधाओं, इच्छाओं को अपनी संतान के लिए स्वाह कर देते हैं वे अपने जीवन में इतना सहते-समझौता करते है तो फिर आने वाली पीढ़ी क्यों उनके लिए अपनी कुछ तथाकथित आत्मकेन्द्रिता, स्वतंत्रता एवं जीवन जीने की मान्यताओं के साथ सामंजस्य करने का प्रयास नहीं कर पाती है। बुजुर्गों द्वारा किए गए इस त्याग-संघर्ष के प्रतिउत्तर में नई पीढ़ी द्वारा मिले तिरस्कार व उपेक्षा का मार्मिक अंकन बड़ी संजीदगी एवं गम्भीरता के साथ हिन्दी ग़ज़ल हमारे सम्मुख प्रस्तुत करती है-

''अब उस माँ का उसे बेटा कहाने में झिझक क्यूँ है
कि जिसने अपने जेवर बेचकर उसको पढ़ाया था।''[5]
महावीर सिंह दुःखी)

महावीर 'दुःखी' अपने शेर में नई पीढ़ी को कटघरे में खड़ा कर उनसे प्रश्न पूछते है कि आखिर क्यों यह पीढ़ी अपने माता-पिता के प्रति इतना उपेक्षापूर्ण व्यवहार करती है। तरक्की की चंद सीढ़ियाँ चढ़ने के साथ ही उनका स्टेट्स सिम्बल उन्हें अपनी माँ को माँ कहने से भी रोकता है। भारतीय समाज की मूल्य-व्यवस्था में आए इस खोखलेपन को यह शेर बखूबी उजागर करता है। एक दृष्टि से 'दुःखी' ने 'चीप की दावत' कहानी की मूल संवेदना को ही और अधिक गहन व सूक्ष्मता के साथ अपनी इन दो पंक्तियों में व्यक्त किया है। यद्यपि यह एक राहत भरी बात है कि इस संदर्भ में बुजुर्गों को कुछ कानूनी सहूलियत हासिल है तथा कुछ मुकद्दमों में ऐसे नज़ीर बनने वाले न्यायिक निर्णय भी आए है कि यदि संतान अपने अभिभावकों (बुजुर्गों) की देखभाल नहीं करती है तो बुजुर्ग उन्हें अपनी सम्पत्ति से निकाल भी सकते हैं, बेदखल भी कर सकते हैं। इन कानूनी दाँव-पेंचों में अधिकांश वृद्धजन फँसने से बचते ही है तथा कुछ अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को बचाने तथा कुछ वृद्धावस्था की असमर्थता के चलते अपने अपमान का घूँट पीते रहने की विवशता को ही जीते रहते हैं। व्यावसायिक मूल्यों के बढ़ते प्रभाव के चलते वर्तमान समय में बुजुर्गों अपने ही परिवार में अवांछनीय तथा भार समझे जाने लगे है। उनकी अपनी ही संतानें अपने-

अपने जीवन में इतने आत्मकेन्द्रित एवं व्यस्त रहते है कि उनके पास अपने जन्मदाताओं के लिए अवकाश ही नहीं रहता। अपनी समृद्धि एवं सुख में वे अपने माता-पिता की हिस्सेदारी व महत्व को विस्मृत किए रहते हैं। इन तमाम स्थितियों को हिन्दी ग़ज़ल समग्रता, गहनता व सूक्ष्मता के साथ व्यक्त करती है-

''कितना जिए, कहाँ से जिए और किसलिए
ये इख्तियार हम पे है तकदीर पर नहीं
अब तो खुद अपने खून ने भी साफ कह दिया
मैं आपका रहूँगा मगर उम्र भर नहीं।''[6]

आलोक श्रीवास्तव)

यह भी एक विचारणीय तथ्य है कि वृद्धजनों से जुड़ी समस्याओं का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आर्थिक समस्याओं से नहीं जोड़ा जा सकता है। आलोक श्रीवास्तव के अश्आर के आखिरी मिसरे में दिखाई देता है कि 'मैं आपका रहूँगा मगर उम्र भर नहीं' यह मूल बिन्दु है जिसकी परिणति बुजुर्गों के निष्कासन के रूप में होती है। उम्र भर आपका न रहने के पीछे युवा पीढ़ी की अपने स्वयं के जीवन को अपने ढंग से जीने की आजादी, आत्मकेन्द्रिता तथा अपनी महत्वकांक्षाओं के पीछे दौड़ने की बलवती प्रवृत्ति ही है। इसमें कई बार तो एक से अधिक संतान होने पर माता-पिता किराएदार व भार की तरह एक-दूसरे के यहाँ भटकने को अभिशप्त होते हैं। दरवेश भारती बुजुर्गों की इस पीड़ा को बेबाकी से बयाँ करते है-

''इक यहाँ है इक वहाँ तो एक कहीं है अपना सपूत
अब हिंडोले से बने इत-उत रहे है झूल हम
कुछ न पूछो माजरा दरवेश क्यों चुप साध ली
दे तो सकते थे जवाब इस प्रश्न का माकूल हम।''[7]

अपने जीवन के साथ हो रहे इस भद्दे मजाक का प्रतिउत्तर बुजुर्ग दे सकते है किन्तु दरवेश भारती अपने शेर में पुरानी पीढ़ी की अपने मूल्यों व सामाजिक प्रतिष्ठा से जुड़े होने की विवशता की ओर संकेत करते है जो उन्हें रोक लेती है। समस्या तब जटिल रूप ले लेती है जब समाज व परिवार में इस ओर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने के स्थान पर युवा पीढ़ी अपने ही दृष्टिकोण से हर बात को देखने लग जाती है। यदि ऐसे में बुजुर्ग कुछ असमर्थ, अस्वस्थ हो जाए तो उसका जीवन और अधिक दूभर हो जाता है। गोविंद सेन, कृषक जीवन से एक उपमान लेकर बुजुर्गों की इस दयनीय दशा को कुछ इस तरह व्यक्त करते हैं-

''जैसे खरपतवार है बापू/अनचाहे बेकार है बापू
सबकी आँखों में चुभते है/आँखों से लाचार है बापू।'*[8]

(गोविन्द सेन)

''पिता का फर्ज है बेटे की परवरिश करना
हुआ हो बाप जो बूढ़ा उसे सम्भाले कौन।''[9]

साजिद प्रेमी बड़ी सहजता व संजीदगी के साथ सीधा-सा सवाल करते है कि बेटे की परवरिश करना तो पिता का फर्ज है। वही बेटा बड़ा होकर अपने अधिकार, आजादी, अपने जीवन की बात करने लगता है तो फिर ऐसे में उसी पिता के बुढ़ापे की देखभाल किसका फर्ज है? यह बड़ा सीधा-सा प्रश्न इन तथाकथित आधुनिक

व्यक्तिवादी, आत्मकेन्द्रित जीवन मूल्यों के पक्षधर युवाओं-चिंतकों से है कि बच्चों के पालन-पोषण में जब पुरानी पीढ़ी अपनी आजादी-सपनों महत्वकांक्षाओं के साथ समझौता करती है तो क्या नई पीढ़ी का यह उत्तरदायित्व नहीं बनता है कि वे भी कुछ समझौता व त्याग करके उसका प्रतिउत्तर दे। नई पीढ़ी वैचारिक टकराहट से बचने के लिए बुजुर्गों से बात करने, उनके निकट जाने से कतराती है। जीवन भर भागदौड़ कर व्यस्तता में जीवन बीताने के चलते बुजुर्ग अपने बुढ़ापे के लिए कोई योजना ही नहीं बना पातें। इसके साथ ही शारीरिक अक्षमता भी उन्हें ज्यादा कुछ करने की स्थिति में नहीं छोड़ती। वर्तमान दौर के सर्वाधिक बुजुर्ग शायरों में शुमार बालस्वरूप राही बड़े हल्के-फुल्के अंदाज में वृद्धावस्था की इस समस्या को इस तरह बयाँ करते है-

''किसी महफिल, किसी जलवे किसी बुत से नहीं नाता
पड़े है एक कौन में अजब फुर्सत के दिन आए
चलो 'राही' पुराने दोस्तों के पास हो आए
तसल्ली दिल की कुछ तो हो, बड़ी आफत के दिन आए।''[10]

व्द्धावस्था में यह दिल की तसल्ली भी एक मुख्य समस्या होती है। बहुत से विद्वानों का मानना है कि बुजुर्गों की आर्थिक-सामाजिक समस्याओं की अपेक्षा सम्पन्न देशों व वर्गों में उनकी बड़ी समस्या मानसिक पृष्ठभूमि से जुड़ी होती है। इसी वक्तकटी व अकेलेपन की समस्या की ओर 'राही' इशारा कर रहे हैं। इसके साथ ही बुजुर्गों के साथ संवादहीनता की स्थिति भी उन्हें अवसादग्रस्त स्थिति में पहुँचा देती है। युवा पीढ़ी उनकी बात सुनने, उनसे बात करने को ही प्रस्तुत नहीं होता है, वे क्या सोचते है? क्या चाहते है? किस मुद्दे पर उनकी राय क्या है? उसे भले ही कोई माने या न माने किन्तु उसे सुनने वाला भी कोई नहीं होता। विचार हमारी मानसिक प्रक्रिया का अभिन्न अंग है और वृद्धावस्था में समय पर्याप्त होने से अपने उमड़ते-घुमड़ते विचारों व जीवनानुभवों को वे व्यक्त करने का अवसर तलाशते रह जाते हैं। कुमार विनोद बुजुर्गों की इस मनःस्थिति को बड़ी गहनता से व्यक्त करते हुए मानस पटल पर अंकित हो जाने वाला एक दृश्य बिम्ब कुछ इस तरह रचते है-

''यूँ तो दुनिया भर की चीज़ें घर में/फिर भी खुशियों से है कायम फासला

डॉक्टर ने हाले-दिल उसका सुना/बस यही थी बूढ़े रोगी की दवा।''[11]

बुजुर्गावस्था के रोग की एक महत्वपूर्ण दवा उनके साथ सहज भाव से कायम किया गया संवाद भी है। तमाम शोध इस तथ्य की पुष्टि करते है कि व्यक्ति अकेलेपन व संवादहीनता की दशा में मानसिक अवसाद की स्थिति में पहुँच जाता है। महानगरीय वृद्ध जीवन में बढ़ते मानसिक रोगों की इसी स्थिति पर विनोद का यह शेर बहुत सूक्ष्म नोटिस लेता है। विक्रम सिंह जाखड़ अपने लेख 'वृद्धावस्था एवं बदलते सामाजिक मूल्य' में बुजुर्गों की इस अवसादपूर्ण मनःस्थिति का बड़ा सूक्ष्म विश्लेषण करते हुए लिखते है- ''जीवन में अकेलेपन के कारण वृद्धजनों में स्वयं को अवांछित मानने तथा सामाजिक सम्बन्धों, आत्मीय

सम्बन्धों, आत्म सम्मान एवं विश्वास में कमी जैसी समस्याओं का प्रादुर्भाव हो जाता है। इन वृद्धजनों का एकाकीपन उनके लिए विषाद का विषय बन जाता है तथा उसमें जीवन की निरर्थकता की भावना प्रबल होने के साथ ही मृत्यु का भय भी व्याप्त हो जाता है।''[12]

वृद्ध जीवन के एकाकीपन पारिवारिक-टकराहट तथा सेवा-सुश्रुषा की दृष्टि से एक उपाय के रूप में पाश्चात्य औद्योगिक समाजों में वृद्धाश्रम जैसी व्यवस्था की इजाद की गई है। यह व्यवस्था पाश्चात्य देशों में तो काफी फल-फूल रही है क्योंकि वहाँ पर सामाजिक मूल्य-व्यवस्था ऐसी है कि पारिवारिक सम्बन्ध व आत्मीयता के धागे काफी शिथिल है किन्तु भारत जैसे परम्परागत समाज में वृद्धाश्रम जैसी व्यवस्था के विषय में सदी के अंतिम दशक तक कोई सोचता भी नहीं था। भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया से जुड़कर अब इक्कीसवीं सदी में भारत में भी वृद्धाश्रम जैसी व्यवस्था अपना विस्तार करती जा रही है। अपना सम्पूर्ण जीवन भारतीय परम्पराओं संस्कारों के परिवेश में व्यतीत करने के चलते भारतीय वृद्धजन उस आत्मीयता व सामाजिक जुड़ाव से विमुख हो पाने की मानसिक स्थिति में नहीं होते हैं। राधेश्याम शुक्ल वृद्धाश्रम में रह रहे बुजुर्गों की इस आत्मीयता की तलाश की पीड़ा तथा उस नादान बचपन के प्रति जुड़ाव को जो बालक अपने दादा-दादी की छत्रछाया में महसूस करते हैं, अपनी ग़ज़ल में बड़ी मार्मिकता के साथ व्यक्त करते हैं-

''आई घर की याद बंद कमरे में वृद्धाश्रम रोया
आँखों में उतरी उदासियाँ मन ही मन में गम रोया
तुतला सम्बोधन बूढ़े बरगद को जड़ से हिला गया
शीतल छाया की सुधि कर, घर का गुलाब क्या कम रोया।''[13]

वृद्धाश्रम की इस मानसिक वेदना के सन्दर्भ में महातम मिश्रा अपने एक लेख में बड़ी महत्वपूर्ण बात उठाते हैं कि ''उनके हाथों के छाले उनकी झूलती झुर्रिया अपनों से पूछना चाहती है कि जब इस आश्रम में मेरी जगह नहीं तो इस वृद्धाश्रम में कौन ऐसा फरिश्ता है जो उन्हें अपनत्व देने के लिए व्याकुल हुआ जा रहा है . . . महसूस करना चाहता था तुम्हारा अपना बचपन इस बुढ़ापे में इन अबोध नाती-पोतों के साथ और सुख की नींद सो जाना चाहता था। इसी छत के नीचे जिसे हमने अपने अरमानों को कुचल कर बनाया था।''[14]

वस्तुतः भारतीय सामाजिक संरचना एवं मूल्य व्यवस्था में वृद्धाश्रम जैसी व्यवस्था वृद्ध जीवन की समस्याओं का ऊपरी तौर पर भले ही एक सीधा व सहज हल दिखाई देता हो किन्तु यह इतना सरल विषय है नहीं। इस समस्या की बुनावट बड़ी जटिल है इसमें भौतिक सुख-सुविधाओं से कहीं अधिक मानसिक-सामाजिक संस्कारगत मूल्य व्यवस्था के विविध पक्ष व प्रश्न जुड़े हुए है। यह एक निरन्तर चलने वाली सामाजिक प्रक्रिया का हिस्सा है जो आज युवा है कल उन्हें भी फिर इसी अवस्था और उन समस्याओं से दो-चार होना होगा क्योंकि यह तो नियति का चक्र है, जिसमें सभी को जीवन की सभी अवस्थाओं से होकर गुजरना ही है। हरवंश सिंह 'अक्स' युवा पीढ़ी को सावधान करते हुए जिन्दगी की इस तल्ख हकीकत को कुछ यूँ बयाँ करते हैं-

''जो बुजुर्गों से कर रहा है तू/कल वही तेरे संग भी होगी

होगी परछाई तक न फिर कोई/जीस्त में ऐसी जंग भी होगी।''[1]

अस्तु हम कह सकते हैं कि वृद्ध जीवन की समस्या कोई एक पक्षीय नहीं है। उसकी संरचना बड़ी जटिल है- आर्थिक, सामाजिक, संस्कारगत, मूल्यगत पहलुओं के साथ-साथ उनमें दो पीढ़ियों के परिवेश व वैचारिक द्वंद्व, उनसे उत्पन्न मानसिक अवसाद, पीड़ा, घुटन, संवादहीनता आदि तमाम पहलू संश्लिष्ट रूप से जुड़े है। हिन्दी ग़ज़ल वृद्ध जीवन से जुड़े विभिन्न मुद्दों, संवेदनाओं के गह्वर में उतरकर उसकी गहन जाँच-पड़ताल करते हुए उसे शब्दगत अनुभवों में रूपांतरित कर नई अर्थव्याप्तियों के साथ अभिव्यक्त करती है। साथ ही वृद्ध जीवन की समस्या व पीड़ा के समाधान की ओर एक संकेत भी प्रस्तुत करती है। आवश्यकता इस बात की है कि अपने दृष्टिकोण को संकुचित, आत्मकेन्द्रित व आत्मपोषित आचरण के दायरे से निकालकर व्यापक परिप्रेक्ष्य में उदारतापूर्वक संवेदनशीलता के साथ विचारवान होने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. अमित कुमार सिंह- भूमण्डलीकरण और भारत: परिदृश्य और विकल्प, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2014), पृ°सं° 1-2
2. विजय वाते- ग़ज़ल, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2006), पृ°सं° 19
3. दीक्षित दनकौरी (सं°)- ग़ज़ल: दुष्यंत के बाद (भाग-एक), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2006), पृ°सं° 315
4. देशजमन डॉटब्लॉग स्पॉट डॉट कॉम 18 जून 2019
5. दीक्षित दनकौरी (सं°)- ग़ज़ल: दुष्यंत के बाद (भाग-दो), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2006), पृ°सं° 200
6. आलोक श्रीवास्तव- 'आमीन', राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2007), पृ°सं° 47
7. दरवेश भारती- 'रौशनी का सफर', कादम्बरी प्रकाशन, जवाहरनगर, दिल्ली (2013), पृ°सं° 81
8. दीक्षित दनकौरी (सं°)- ग़ज़ल: दुष्यंत के बाद (भाग-दो), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2006), पृ°सं° 337
9. वही (भाग-दो), पृ°सं° 355
10. वही (भाग-एक), पृ°सं° 64
11. कुमार विनोद- 'बेरंग है सब तितलियाँ', आधार प्रकाशन, पंचकूला हरियाणा (2010), पृ°सं° 27
12. अपनी माटी, त्रैमासिक ई-पत्रिका, वर्ण-3, अंक-24, मार्च 2017
13. दीक्षित दनकौरी (सं°)- ग़ज़ल: दुष्यंत के बाद (भाग-दो), वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली (2006), पृ°सं° 132
14. शब्द नगरी इन्टरनेट शब्द डा◌ॅट इन पर पोस्ट, 9 दिसम्बर 2018

15. हरवंस सिंह ‘अक्स’- ‘सन्नाटे में दस्तक’, बोधि प्रकाशन, जयपुर (राजस्थान) (2002), पृ°सं° 49